सुधा बीज बोने से पहिले, काल कूट पीना होगा।
पहिन मौत का मुकुट विश्व-हित, मानव को जीना होगा॥

भाग ४] १ फरवरी सन् १९४३ [अङ्क २

जागरण गान

[लेखक—श्री० भगवतीप्रसाद बाजपेयी]

जग रे, जीवन के राग जाग,
प्राणों की धूमित आग जाग!

जो गिरते गिरते उठ न सके,
जो रोते रोते हँस न सके,
उन मरण शील इतिहासों के—
उपवन के सुमन पराग जाग!
जगरे जीवन के पराग जाग!!

अन्तः निःसृत निःश्वासों में,
अपमान भरे उपहासों में
जिनका अग अणु होगया भस्म—
उनके संस्मरण विहाग जाग!
जगरे, जीवन के राग जाग!!

पीड़ित जनकी परवशता में,
शोषित दल की दुर्बलता में,
जो चिनगारियाँ सुषुप्त रहीं—
उनकी लपटों के नाग जाग!
जगरे, जीवन के राग जाग!!
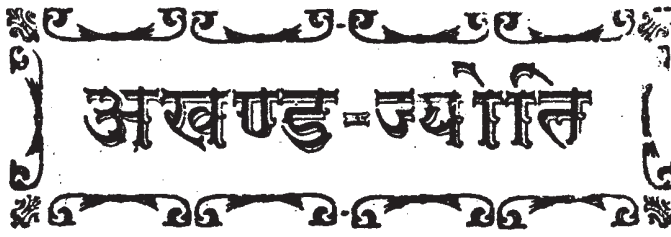
उतर स्वर्ग से भूमण्डल पर 'सत्' की अमरज्योति आती है।
वेणु बजाती सत्य-प्रेम की, सुमधुर न्याय गान गाती है॥

मथुरा. १ फरवरी सन् १९४३ ई०

सम्पादकीय टिप्पणियां।

(१) कागज का घोर अकाल

समाचार पत्रों के पाठक यह जानते ही हैं कि युद्ध-जनित कठिनाइयों के कारण आज कल कागज कितना दुष्प्राप्य हो रहा है। बड़े बड़े शहरों में तो किसी प्रकार चोरी छिपे वह मिल भी जाता है, पर मथुरा जैसे छोटे शहरों में तो असाधारण कठिनाई का सामना करना पड़ता है। पुराना कुछ भी स्टाक न होने के कारण हमें हर महीने कागज़ खरीदना पड़ता है और इसके लिए एक एक दस्ता तलाश करते हुए इधर उधर प्यासा सा भटकना पड़ता है। कीमत करीब १० गुनी होगई है। अखण्ड-ज्योति की एक कापी में पहिले यदि दो पैसे का कागज लगता था, तो अब पांच आने का लगेगा। छपाई, डाक खर्च, बाइडिंग, खोये हुए अंकों को दुबारा भेजने का खर्च अलग। इस प्रकार इन दिनों निर्धारित अखण्ड-ज्योति की लागात कई गुनी पड़ती है। पृष्ठ संख्या कम कर देने पर भी खर्च प्रति कापी के ऊपर चार आना आता है। कागज मिलने की असुविधा हमारे मार्ग की सब से बड़ी बाधा है। उसका कुछ हल करने के लिए मथुरा में हाथ की बना कागज तैयार होने की कुछ व्यवस्था कर रहे हैं। इस अंक में जो कागज़ लगा है, वह ब्रजवासी मज़दूरों के हाथ का बना हुआ है। अगले अंक से कुछ और बढ़िया कागज बन सकने की आशा है। हम चाहते हैं, कि अगले कुछ महीनों के लिए कागज का स्टाक तैयार हो जाय, परन्तु पैसे की कमी से कार्य आगे नहीं बढ़ पाता। उदार पाठक इस पुनीत कार्य के लिए कुछ आर्थिक सहयोग दें, तो कार्य सुगम हो सकता है, शुरू में कागज भद्दा बना है, आशा है कि अपनी कुरूप वस्तु को भी पाठक स्वीकार करेंगे।

(२) लेख मालाएं

पिछले अंकों में कुछ लेख मालाएँ आरम्भ हुई थीं, उनमें से अधिकांश के पूरे लेख नई प्रकाशित पुस्तकों में छप गये हैं, जो लेख मालाएँ अधूरी रह गई हैं, वे आगे की पुस्तकों में छाप दी जायेंगी। पृष्ठ घटा देने के कारण बड़े लेख तो दो तीन ही पूरी पत्रिका में आवेंगे। इसलिए अब तो इसमें छोटे छोटे लेख छपते रहने की ही व्यवस्था हो सकती है।

(३) सं० २००० अङ्क

जनवरी सन् ४३ का अंक अपनी उत्तमता के कारण छपने पर दस रोज में ही समाप्त होगया। मांग अधिक होने के कारण उसके लेख पुस्तकाकार छपाने पड़े। अब हमारे पास सम्वत् २००० अंक की एक भी कापी शेष नहीं है। जो सज्जन इस वर्ष के ग्राहक बन रहें हैं उनके लिए विशेषाक के लेख की संग्रह पुस्तक "सम्वत् २००० और नवयुग" भेजी जा रही है। पाठक उसे ही जनवरी का अंक समझ कर सन्तोष करलें।

(४) पुस्तकों का कमीशन

अब पुस्तकों पर कमीशन देना बिलकुल बन्द कर दिया गया है। कोई सज्जन इसके लिये व्यर्थ लिखा पढ़ी न करें। हां! छै से अधिक पुस्तकें लेने पर डाक खर्च माफ़ किया जा सकता है।

दान का धर्म का मर्म।

(ले०—आचार्य विनोबा भावे)

हम लोगों में धर्म करने की वृत्ति है। दान करने की वृत्ति भी है। यह बहुत अच्छी बात है। इस भूमि में अनेक साधु-सन्त पैदा हुए और उन्होंने भारतीय जीवन को दान भावना से भर दिया है। आप सब साल भर में कुछ न कुछ दान करते हैं, धर्म करते हैं, लेकिन दान करते समय आप कभी विचार भी करते हैं? आज हमने विचार से तो स्तीफा दे ही दिया है। विवेक अब हमारे पास रहा ही नहीं है। विचार का चिराग बुझ जाने से आचार अन्धा बन गया है। मेरे नजदीक बुद्धि या विचार की जितनी क़ीमत है उतनी तीनों लोकों में और किसी चीज की नहीं है। बुद्धि बहुत बड़ी चीज है। आप जब दान देते हैं तो क्या सोचते हैं? चाहे जिसको दान दे देने से क्या वह धर्म कार्य भली भांति हो जाता है? दान और त्याग में भेद है। हम त्याग उस चीज का करते हैं जो बुरी होती है। अपनी पवित्रता को उत्तरोत्तर बढ़ाने के लिए हम उस पवित्रता में बाधा डालने वाली चीजों का त्याग करते हैं। घर को स्वच्छ करने के लिए कूड़े-कचरे का त्याग करते हैं, उसे फेंक देते हैं। त्याग का अर्थ है फेंक देना, लेकिन दान का मतलब फेंकना नहीं है। हमारे दरवाजे पर कोई भिखारी आ गया, कोई बाबाजी आ गये दे दी उसे एक मुट्ठी या एकाध पैसा—इतने से दान क्रिया नहीं होती। वह मुट्ठी भर अन्न फेंक दिया, वह पैसा फेंक दिया। उस कर्म में लापरवाही है। उसमें न तो हृदय है और न बुद्धि। बुद्धि और भावना के सहयोग से जो क्रिया होती है वही सुन्दर होती है। दान के मानी 'फेंकना' नहीं, बल्कि 'बोना' है।

बीज बोते समय जिस तरह जमीन अच्छी है या नहीं, इसका विचार करते हैं, उसी तरह हम जिसे दान देते हैं वह भूमि, वह व्यक्ति, किस प्रकार का है इसकी तरफ़ ध्यान देना चाहिये। किसान जब बीज बोता है, तो एक दाने के सौ दाने बनाने के खयाल से बोता है। वह उसे बड़ी सावधानी से बोता है घर के दाने खेत में बोता है। उन्हें चाहे जैसे बेतरतीब फेंक नहीं देता। घर के दाने तो कम हुए, लेकिन वहाँ खेत में सौ गुने बढ़ गये। दान क्रिया का भी यही हाल है। जिसे हमने मुट्ठी भर दाने दिये, क्या वह उनकी क़ीमत बढ़ायेगा? क्या वह उन दानों की अपेक्षा सौगुने मूल्य का कोई काम करेगा? दान करते समय लेने वाला ऐसा ढूंढो जो उस दान की कीमत बढ़ावे। हम जो दान करें वह दान ऐसा हो कि जिससे समाज को सौगुना फ़ायदा हो। वह दान ऐसा हो जो समाज को सफल बनावे। हमें यह विश्वास होना चाहिये कि उस दान की बदौलत समाज में आलस, व्यभिचार और अनीति नहीं बढ़ेगी। आपने एक आदमी को पैसे दिये, दान दिया और उसने उनका दुरुपयोग किया, उस दान के बल पर अनीतिमय आचरण किया तो उस पाप की जिम्मेदारी आपकी भी है। उस पापमय मनुष्य से सहयोग करने के कारण आप भी दोषभाक् बने। आपको यह देखना चाहिये कि हम असत्य अनीति, आलस्य, अन्याय से सहयोग कर रहे हैं या सत्य, उद्योग श्रम, लगन, नीति और धर्म से। आपको इस बात का विचार करना चाहिये कि आपके दिये हुए दान का उपयोग होता है या दुरुपयोग। अगर आप इसका खयाल नहीं रक्खेंगे तो आपकी दान क्रिया का अर्थ यही होगा कि किसी चीज को लापरवाही से फेंक दें। हम जो दान देते हैं, उसकी तरफ़ हमारा पूरा पूरा ध्यान होना चाहिये। दान का अर्थ है बीज बोना। आपको यह देखना चाहिये कि वह बीज अङ्कुरित होकर उसका पौधा बढ़ता है या नहीं और वह पौधा फलता फूलता है या नहीं। तगड़े और और निरोगी आदमी को भीख देना, दान करना,

अन्याय है। कर्महीन मनुष्य भिक्षा का, दान का, अधिकारी नहीं हो सकता।

भगवान् का यह क़ानून है कि हर एक मनुष्य अपनी मिहनत से जीये। दुनियाँ में बिना शारीरिक श्रम के भिक्षा मांगने का अधिकार केवल सच्चे संन्यासी को है। सच्चे संन्यासी का—जो ईश्वर भक्ति के रङ्ग में रङ्गा हुआ है ऐसे संन्यासी का ही यह अधिकार है, क्योंकि ऊपर से देखने में भले ही ऐसा मालूम पड़ता है कि वह कुछ नहीं करता तो भी दूसरी अनेक बातों से वह समाज की सेवा करता है, लेकिन ऐसे संन्यासी को छोड़कर और किसी को भी अकर्मण्य रहने का अधिकार नहीं है। दुनियाँ में आलस्य को पोसने जैसा दूसरा भयङ्कर पाप नहीं है।

आलस्य परमेश्वर के दिये हुए हाथ पैरों का अपमान है अगर कोई अन्धा हो तो उसे रोटी तो मैं देनी चाहिये, लेकिन उससे भी सात आठ घण्टे काम तो दूंगा। उसे रुई लढ़ने का काम दे दूंगा। जब एक हाथ थक जाय तो दूसरा हाथ काम कर सकें वह काम उससे कराकर उन्हें रोटी देना चाहिये। इससे श्रम की पूजा होती है। इस लिये जिसे आप दान देते हैं, वह कुछ समाज सेवा, कुछ उपयोगी काम करता है या नहीं, यह भी आपको देखना चाहिये उस दान को बोया हुआ बीज समझिये। समाज को उसका पूरा पूरा मुआवजा मिले यह जरूरी है। अगर दाता अपने दान के विषय में ऐसी दृष्टि नहीं रक्खेगा तो वह दान के बदले अधर्म होगा। वह उपेक्षा या लापरवाही का काम होगा।

चाहे जिसे कुछ न कुछ देने से, भोजन कराने, बिना विचारे दान, धर्म करने से अनर्थ होता है। अगर कोई गोरक्षण या गोशाला को कुछ देना चाहता है, तो उसको यह देखना चाहिये कि क्या उस गोशाला से बढ़ी देन वाली गायें निकलती दिखाई देती हैं? क्या वहां गायों की औलाद सुधारने की भी कोशिश होती है? क्या बच्चों को गाय का सुन्दर और स्वच्छ दूध मिलता है? क्या वहां से अच्छे अच्छे बछड़े खेती के लिये मिलते हैं? क्या गोरक्षण और गोवर्धन की वैज्ञानिक खोजबीन वहाँ होती है? जहाँ मरियल गायों की भरमार है, गोबर गन्दगी से सारी हवा बसा रखी है, इस तरह से पिंजरापोल रखना दान धर्म नहीं है। किसी संस्था या व्यक्ति को जो कुछ आप देते हैं, उससे समाज को कहाँ तक लाभ होता है, यह आपको देखना ही चाहिये। हिन्दुस्तान में दानवृत्ति में विचार न होने के कारण समाज, समृद्ध और सुन्दर दीखने के बजाय आज निस्तेज नाटा और रोगी दिखाई देता है। आप पैसे फेंकते हैं, बोते नहीं हैं। इससे न इहलोक है न परलोक, यह आप न भूलें।

———

यदि मनुष्य को सफलता प्राप्त करनी हो तो उसे जीवन में अपना कार्य निर्धारित कर लेना चाहिये। फिर उसकी प्राप्ति के लिये एकाग्रता से प्रयत्न करना चाहिये।

× × ×

इस धोखे में न रहो, कि ईश्वर से छल चल जायगा। मनुष्य जो कुछ बोता है वही काटता है।

× × ×

ऐश्वर्य से मन दुर्बल होता है। दरिद्रता और अभाव से पुष्ट और बलयुक्त होता है।

× × ×

एक बार एक शिष्य अपने गुरु की बुराई कर रहा था। तो (परमहंसजी) ने कहा तुम अवगुणों की तरफ ध्यान न देकर गुणों का गृहण करते रहो।

———

सर्व धर्म समन्वय ।

--:(❀):--

अपने को धार्मिक कहने वाले व्यक्तियों को हम तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं (१) अन्वयी (२) प्रत्ययी, (३) समन्वयी । अन्वय का अर्थ (अनु + अय) पीछे जाना, प्रत्यय का अर्थ (प्रति + अय) विरुद्ध जाना और समन्वय का अर्थ (सम + अनु + अय) भले प्रकार पीछे जाना है । अन्वयी उन व्यक्तियों को कहते हैं, जो बुद्धि बेचकर किसी बात का अन्धानुकरण करते हैं । अमुक बात प्रचलित है । बस ! इसी लिए उन्हें स्वीकार है, इतने लोग इसे मानते हैं फिर यह गलत कैसे हो सकती है । बस ! इतना ही तर्क उसके लिए काफी है । किसी प्रख्यात व्यक्ति या मोटी पुस्तक ने उस बात का समर्थन कर दिया । बस ! यह बात भी सन्तोष के लिए पर्याप्त है । जो चीज़ जैसी उसके सामने है, उसीको वे सर्व श्रेष्ठ समझ बैठते हैं । इतना कष्ट कौन करे जो यह सोचे कि यह बात देश काल के अनुरूप है या नहीं, इससे हमें लाभ होगा या हानि । अज्ञान भेड़ों का स्वभाव यह है कि एक भेड़ का मुँह जिधर को उठ जाय और वह जिधर भी चल पड़े इधर ही झुण्ड की अन्य भेड़ें भी चल देंगी, उन्हें यह सोच विचार करने की जरूरत प्रतीत नहीं होती, कि हम कहाँ जा रही हैं और क्या परिणाम उठावेंगी । अधिकांश धार्मिक ऐसे ही अन्वयी होते हैं वे निकट तम परम्परा से चिपट जाते हैं और आत्मिक निर्बलता के कारण अपने आस पास के लोगों के विचार भार से इतने दब जाते हैं कि स्वतन्त्र रूप से उसके हानि लाभों पर विचार करते हुए उन्हें डर, झिझक और कष्ट प्रतीत होता है अनेक मनुष्य ऐसे ही संकुचित दायरों में बँधे हुए हैं और कष्ट कर प्रथाओं को अनुयायी बड़े पढ़े लिखे लोग भी मिल सकते हैं जो सब दृष्टियों से स्वास्थ्य और समाज की वर्तमान अवस्था के बिलकुल प्रतिकूल है । ऐसे अन्ध अनुयायियों को अन्वयी कहा जायगा ।

चाहे कोई धर्म कितना ही बुरा क्यों न हो पर उसके मूल भूत सिद्धान्त दूसरों से टकराते नहीं, किन्तु अज्ञान और अन्धानुकरण जैसी दो वस्तुएँ मिलती हैं तो प्रत्यय उत्पन्न होता है । 'मैं दूसरे की बात को नहीं मानूंगा ।' ऐसा प्रत्ययी का दृढ़ निश्चय होता है । मैं सच बोलता हूँ और सब झूठे हैं, ऐसी मान्यता प्रत्ययी ही कर सकता है । एक बार दो मनुष्यों में लड़ाई हो रही थी एक कह रहा था, कि मैंने पहाड़ों को दौड़ते हुए देखा है । दूसरा कहता था कि बिलकुल झूठ है ऐसा हो ही नहीं सकता, पहाड़ तो अपनी जगह पर से जरा दूर भी चलने में असमर्थ है । दोनों ही अपनी बात पर जोर दे रहे थे और विरोधी की हठधर्मी से चिढ़कर लड़ने मरने पर उतारू थे । गाली गलौज हो रही थी और हाथा-पाई की तैयारी थी । इतने में एक विचारवान सज्जन उधर से निकले और लड़ाई का कारण पूछा । जब दोनों की बात सुन चुके तो वे मन ही मन हँसे और झगड़े का कारण समझ गये । उन सज्जन ने पहाड़ दौड़ने की बात का आग्रह करने वाले से पूछा कि-भाई ! जब तुमने पहाड़ दौड़ते देखे थे, तो रेलगाड़ी में तो नहीं बैठे थे ? उसने उत्तर दिया-हां जी, रेलगाड़ी में यात्रा करते समय ही पर्वतों की घुड़दौड़ मुझे दिखाई दी थी तब उन सज्जन ने समझाया कि मित्र ! रेल के दौड़ने से पर्वत चलने का भ्रम होता है । दूसरे से उन्होंने कहा कि तुम्हें किसी बात का खंडन करने से पूर्व उस बात के स्थूल रूप को झूठा करार न दे देना चाहिए, वरन् कहने वाले के दृष्टिकोण, उसकी मानसिक योग्यता और घटना का वास्तविक कारण तलाश करना चाहिए ।

आये दिन साम्प्रदायिक कलह होने और विरोधी विचार वालों को शत्रु समझ लेने का कारण यह प्रत्यय ही है । जो मैं कहता हूँ वही ठीक है, केवल मैं ही सत्य कहता हूँ ऐसा मानना प्रत्यय है । प्रत्यय का निश्चित परिणाम कलह है । अन्यथा धर्म पृथक् २ तो हैं पर आपस में टकराते नहीं । विचार भिन्नता अस्वाभाविक नहीं वरन् आवश्यक है फिर लड़ने झगड़ने का क्या कारण ? जो धर्म के नाम पर दूसरे का खून पीने खड़े होते हैं समझ लीजिये कि वे प्रत्ययी हैं ।

इन दोनों तामसी राजसी अवस्थाओं से ऊपर सत् है। सतोगुण के साथ जब धर्म तत्व का सम्मिश्रण होता है तो मनुष्य समन्वयी बन जाता है। भले प्रकार पीछे चलने वाला वह है जो किसी वस्तु का वास्तविक स्वरूप देखता है उसके गुण दोषों को पहचानता है और उपयोगी पदार्थ को ग्रहण करता है। राजहंस न तो पानी से द्वेष करते हैं और न दूध से राग। उन्हें चाहे दूध में पानी मिला हुआ दिया जाय या दूध में पानी, वे न तो झुंझलाते हैं और न किसी को दोष देते हैं वरन अपने काम के योग्य सार वस्तु निकाल लेते हैं। अमुक धर्म अच्छा है और अमुक बुरा इस झगड़े में राजहंस वृत्ति के विचारवान सज्जन नहीं पड़ते। वे अपने काम के योग्य वस्तु ग्रहण कर लेते हैं और अनुपयोगी वस्तु की उपेक्षा कर देते हैं। सभी धर्म सत्य की ओर हम अग्रसर करते हैं, किन्तु मनुष्य कृत होने के कारण, वे सभी अपूर्ण हैं। यदि किसी छोटे कपड़े में फिट रहने योग्य ही अपने शरीर को बनाये रखने का प्रयत्न करेंगे तो आपको चारों ओर से अपना बदन कस देना पड़ेगा और अपने वृद्धि क्रम को रोक देना पड़ेगा। वस्त्र के मोह पर शरीर की वृद्धि का बलिदान करना पड़ेगा। धर्म शास्त्र आप से निवेदन करता है कि ऐसा मत कीजिए आप शरीर को बढ़ने दीजिए और जो कपड़ा छोटा प्रतीत होता है उसे बदल लीजिए। सभी धर्म में कुछ न कुछ गुण हैं और सभी में कुछ न कुछ दोष। इसलिए निष्पक्ष होकर उन्हीं सिद्धान्तों को अपनाइए जो आप को आत्म कल्याण की ओर अग्रसर करते हैं आप उन्हीं प्रथाओं को अपनाइए जो आप संतोष को प्रदान करें। आपकी आध्यात्मिक चेतना में यदि कोई मजहबी मान्यता विरोध उत्पन्न करें, यदि आपका आत्मा पुकारे कि मेरे लिए यह रिवाज असत्य है तो आप उस प्रथा को मानने से इनकार कर दीजिए। मार्ग आत्मा को उन्नति के लक्ष पर पहुंचाने के लिए हैं, मार्गों पर चलने के लिए ही आत्मा का अस्तित्व नहीं है। आप मानसिक दासता के विरुद्ध बगावत का झण्डा खड़ा कीजिए, दूसरे लोग ऐसा कहते हैं, या मानते हैं यह कोई कारण नहीं है जो आपको भी वैसा ही करने या मानने के लिए बाध्य करें। हर व्यक्ति अपनी अलग कक्षा में विकाश कर रहा है। आपका विकास क्रम भी अलग है। हर व्यक्ति का धर्म दूसरे से सर्वथा भिन्न है आपका धर्म भी दूसरों से बिलकुल स्वतन्त्र है। आप अपनी आत्मा में उठने वाले ईश्वरीय सन्देश को सुनिए और उसी के अनुरूप मानसिक भोजन जिस खेत में भी मिले उसमें से चर लीजिए। सब धर्मों का सार ग्रहण कीजिए। समन्वयी बनिए, धर्मों से बल प्राप्त कीजिए, पर उन्हें भूल कर भी आत्मा का हनन करने वाला मत बनने दीजिए।

वेद का सन्देश

मिल-जुल कर प्रेम पूर्वक रहो।

तुम्हारी जलशाला एक सी हो, अन्न का विभाजन एक साथ हो, एक ही जुए में मैं तुमको साथ-साथ जोड़ता हूँ जैसे पहिये के अरे नाभि में चारों ओर से जुड़े होते हैं, वैसे ही तुम सब मिल-कर ज्ञान स्वरूप प्रभु की पूजा करो।

अथर्व ३—३०—६

आपस में मिलो, संवाद करो जिससे तुम्हारे मन एक ज्ञान वाले हों, जैसा कि पहिले देवता एक मन होकर अपने-अपने भाग का सेवन कर रहे हैं, अर्थात् अपना कर्त्तव्य करते हुए विश्व की स्थिति के कारण बने हुए हैं।

ऋग्वेद १०—१९—१२

हे दृढ़ बनाने वाले! मुझे ऐसा दृढ़ बना कि सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं स्वयं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखता हूँ (और चाहता हूं कि) हम सब आपस में एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें।

यजु० ३६—१८

कथा—

त्याग का रहस्य।

एक बार महर्षि नारद ज्ञान का प्रचार करते हुए किसी सघन बन में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक बहुत बड़ा घनी छाया वाला सेमर का वृक्ष देखा और उसकी छाया में विश्राम करने के लिए ठहर गये।

नारदजी को उसकी शीतल छाया में आराम करके बड़ा आनन्द हुआ वे उसके वैभव की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। उन्होंने उससे पूछा कि वृक्षराज! तुम्हारा इतना बड़ा वैभव किस प्रकार सुस्थिर रहता है? पवन तुम्हें गिराती क्यों नहीं?

सेमर के वृक्ष ने हसते हुए ऋषि के प्रश्न का उत्तर दिया कि—'भगवन्! बेचारे पवन की कोई सामर्थ्य नहीं कि वह मेरा बाल भी बाँका कर सके। वह मुझे किसी प्रकार गिरा नहीं सकता।" नारदजी को लगा कि सेमर का वृक्ष अभिमान के नशे में ऐसे बचन बोल रहा है। उन्हें यह उत्तर उचित प्रतीत न हुआ और झुँझलाते हुए सुरलोक को चले गये।

सुरपुर में जाकर नारदजी ने पवन से कहा 'अमुक वृक्ष अभिमान पूर्वक दर्प वचन बोलता हुआ आपकी निन्दा करता है, सो उसका अभिमान दूर करना चाहिए।' पवन को अपनी निन्दा करने वाले पर बहुत क्रोध आया और वह उस वृक्ष को उखाड़ फेंकने के लिए बड़े प्रबल प्रवाह के साथ आंधी तूफान की तरह चल दिया।

सेमर का वृक्ष बड़ा तपस्वी परोपकारी और ज्ञानी था, उसे भावी संकट की पूर्व सूचना मिल गई। वृक्ष ने अपने बचने का उपाय तुरन्त ही कर लिया। उसने अपने सारे पत्ते झड़ा डाले और ठूँठ की तरह खड़ा होगया। पवन आया उसने बहुत प्रयत्न किया पर ठूँठ का कुछ भी बिगाड न सका। अन्ततः उसे निराश होकर लौट जाना पड़ा।

कुछ दिन पश्चात् नारदजी उस वृक्ष का परिणाम देखने के लिए उसी बन में फिर पहुँचे, पर वहाँ उन्होंने देखा कि वृक्ष ज्यों का त्यों हरा भरा खड़ा है नारदजी को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सेमर से पूछा— "पवन ने सारी शक्ति के साथ तुम्हें उखाड़ने की चेष्टा की थी पर तुम तो अभी तक ज्यों के त्यों खड़े हुए हो, इसका क्या रहस्य है?"

वृक्ष ने नारदजी को प्रणाम किया और नम्रता पूर्वक निवेदन किया—"ऋषिराज! मेरे पास इतना वैभव है पर मैं इसके मोह में बँधा हुआ नहीं हूँ। संसार की सेवा के लिए इतने पत्तों को धारण किये हुए हूँ, परन्तु जब जरूरत समझता हूँ इस सारे वैभव को बिना किसी हिचकिचाहट के त्याग देता हूँ और ठूंठ बन जाता हूँ। मुझे वैभव का गर्व नहीं था वरन् अपने ठूंठ होने का अभिमान था इसीलिए मैंने पवन की अपेक्षा अपनी सामर्थ्य को अधिक बताया था। आप देख रहे हैं कि उसी निर्लिप्त कर्मयोग के कारण मैं पवन की प्रचंड टक्कर सहता हुआ भी यथा पूर्व खड़ा हुआ हूँ।"

नारदजी समझ गये कि संसार में वैभव रखना, धनवान होना कोई बुरी बात नहीं है। इससे तो बहुत से शुभ कार्य हो सकते हैं। बुराई तो धन के अभिमान में डूब जाने और उससे मोह करने में है। यदि कोई व्यक्ति धनी होते हुए भी मन से पवित्र रहे तो वह एक प्रकार का साधु ही है। ऐसे जल में कमल की तरह निर्लिप्त रहने वाले कर्मयोगी साधु के लिए घर ही तपोभूमि है।

जिस प्रकार तालाब में घास की वजह से मछली दिखाई नहीं देती है। उसी तरह माया के कारण ईश्वर अन्तःकरण में मौजूद होते हुए भी दिखाई नहीं देता है।

हमारे विचारों और अद्भुत प्रभाव।

(श्री० धर्मपालसिंह जी, रुड़की)

जीवन है? और उसको धारण करने का क्या प्रयोजन है? एक परिपूर्ण सफल जीवन क्या होता है? उसके क्या साधन हो सकते हैं? इस प्रकार के अन्य और बहुत से विचार कुछ स्वभावतः ही मनुष्य के मन में उठा करते हैं।

वास्तव में मनुष्य जीवन का जो मुख्य उद्देश्य है वह तो एक ही है केवल ईश्वर प्राप्ती. परन्तु यह तो सर्व श्रेष्ठ और घोर अन्तिम श्रेणी की बात है। जहाँ पर पहुँचने का सौभाग्य, महान् पुण्यात्मा योगी जनों को ही प्राप्त होता है।

सर्व साधारण हम आप जैसे मनुष्यों का तो जीवन उद्देश्य कर्तव्य पालन ही है–अर्थात कुशलता, निष्कपटता एवं सरलता पूर्वक सहज स्वभाव से अपना २ कार्य करना और परिणाम स्वरूप संसार से जाते समय अधिक से अधिक खुशी का भण्डार संसार में छोड़ते हुए विशेष आनन्द और शान्ति को साथ ले जाना। यह है सांसारिक साधारण जीवन की सफल झांकी।

हमें ऐसा कर्त्तव्यनिष्ठ सरल जीवन बनाने का सतत प्रयत्न करते रहना चाहिये। इस प्रकार के जीवन का मूलाधार हमारे विचार ही होते हैं। एक आदर्श जीवन विचारों का ही तो संग्रह होता है।

दूसरों की उन्नति अथवा पतन देखकर जब हम अशुद्ध मन से ईर्षा आदि बुरे भावों के शिकार होते हैं तो इस प्रकार दूसरों के कल्याण चाहने वाले बुरे विचारों का संग्रह होकर हमारा मन घोर कलुषित हो जाता है जिस कारण हम स्वयमेव दुःख सागर में डुबकियाँ लेने लगते हैं इस प्रकार हमारा आध्यात्मिक पतन होना शुरू हो जाता है।

इसके विपरीत हम जितना अधिक स्वार्थ त्याग और पर उपकार के विचारों का केन्द्र अपने अन्दर बनाते जावेंगे उतना ही अधिक हम आनन्द और शांति को प्राप्त होंगे।

जो लोग हमसे किसी प्रकार का फ़ायदा उठाते हैं वह ही गुप्त और प्रकट रूप से हमारा कल्याण करने वाले होते हैं। हमें ऐसी तैयारी कर लेनी चाहिये कि हम मन, कर्म, वचन से हर समय दूसरों का भला ही सोचते रहें–ऐसा करने से निश्चय हम से बुरा चाहने वालों की संख्या कम होकर हमारा भला चाहने वालों की संख्या अधिक हो जायगी और हम अपने चारों ओर सुखद और शान्तिपूर्ण वातावरण बना सकेंगे। जब मनुष्य का मन क्रोध-ईर्षादि बुरे विचारों से रहित हो जाता है तो वह असीम दैवी शक्ति को धारण कर लेता है–उस समय अनेक शत्रु होने पर भी वे उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

इस प्रकार का अद्भुत शान्तिपूर्ण जीवन बनाने में हमें उन घड़ियों में विशेष सतर्कता पूर्वक धैर्य से काम लेने की ज़रूरत है। जब कि किसी प्राणी द्वारा हमें हानि पहुंचाई जा रही हो आध्यात्मिक जीवन में यह समय ही-परीक्षा का समय होता है भरपूर साहस और दृढ़ता से हमें–ऐसे विचारों को हटाने में असीम शक्ति से काम लेना चाहिये जो उस समय में दूसरों का अकल्याण चाहने को हमारे मन आते हैं, ऐसे समय में हम मनसे उनका अकल्याण न चाहें, पर हां! कर्तव्य द्वारा उसका उत्तर देना कोई बुरा नहीं है।

वास्तव में निष्कपट और सरल हृदय वाले व्यक्ति उत्तम लौकिक और पारलौकिक सुखों के स्वामी होते हैं दगा, फरेब, झूंठ ईर्षादि बुरे विचारों से काम चलाने वाले अल्पकालीन तुच्छ सुखों को प्राप्त होते हैं।

अतएव मन, कार्य, वाणी से सदैव दूसरों का हित ही विचारना और करना चाहिये और प्रातःकाल बिस्तर त्यागते समय प्रभु का नाम स्मरण करने के बाद इस मन्त्र को भी एक बार अवश्य उच्चारण कीजिये, कि-"हे प्रभु! संसार के सभी प्राणियों का कल्याण हो"

इस्लाम में गौ का महत्व।

(ले०-सैयद मुस्तफा हसन, रजवी, लखनऊ)

इस्लाम में गौ के आदर सत्कार की बड़ी ताकीद की गई है—यह दूसरी बात है कि भारत वर्ष के मुसलमान साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के कारण उसकी ओर ध्यान न दें और हिन्दुओं की जिद् में गो-बध पर दृढ़ बने रहें।

खुदा ने गाय में इतने अनेकानेक गुण और लाभ इकट्ठे कर दिये हैं—जिसका मुकाबिला संसार का कोई भी जीव नहीं कर सकता। उसका दूध अमृत से अधिक लाभदायक है। उसके दूध और घी में गन्धक की पर्याप्त मात्रा पाई जाती है। बच्चों को माँ के दूध के अतिरिक्त यदि कोई दूध हानि नहीं पहुँचाता तो केवल गाय का ही दूध है, उसका सेवन शरीर को पुष्ट और हड्डी को चौड़ा करता है। दूध पीते बच्चों को जिनको मातायें मर जाती हैं अथवा ऐसी बीमारी हो जाती हैं कि बच्चे को दूध न पिला सकें, तो गाय का दूध सबसे उपकारी होता है। क्षय की बीमारी में गाय का दूध लाखों औषधियों की एक औषधि होता है। दूध, घी और मक्खन मनुष्य को स्वस्थ रखते हैं। दही मट्ठा और मक्खन (लोनी घी) बहुत सी बीमारियों में औषधि के रूप में काम आता है। बस—उसका माँस ही एक ऐसी वस्तु है जिसे सहस्रों रोगों की पोटरी कहा जा सकता है।

इस्लाम में भी इसके दूध, घी और मक्खन के गुणों पर बड़ा जोर दिया गया है और उसके मांस को रोगोत्पादक बताया गया है। रसूल इस्लाम हजरत मुहम्मद साहब की कतिपय हदीसों का अर्थ नीचे दिया जाता है। यद्यपि इन हदीसों का अर्थ नीचे दिया जाता है। यद्यपि इन हदीसों के मूल शब्द भिन्न भिन्न हैं, किन्तु सार अर्थ सबका एक ही सा है।

१—'फरोग काफी' नामक पुस्तक में लिखा है लिखा है कि हजरत इमाम जाफर सादिक, औलिया इस्लाम ने फरमाया है कि गाय का दूध दवा, उसके मक्खन में शिफा (स्वास्थ्यकर) और उसके गोश्त में वबा बीमारी है।

२—अल्लामा जलालुद्दीन सेवती ने अपनी पुस्तक 'अलरहमतद' के पृष्ठ २४, २५ पर लिखा है, कि गाय का गोश्त रोग और उसका दूध दवा है और मक्खन शिफा है।

३—इबन अदी ने इबन जियादतहान के अनुवाद इबन अब्बास में इस तरह कहा गया है—गाय का दूध दवा, उसका मक्खन शिफा और उसका गोश्त बीमारी है।

४—जनाब आयशा कहती है कि—फरमाया जनाब रसूल अल्ला मोहम्मद ने कि गाय के दूध में शिफा, उसके मक्खन में दवा और उसके गोश्त में बीमारी है।

५—अल्लामा अबू दाऊद ने लिखा है कि—गाय का गोश्त बीमारी, उसका मक्खन दवा और उसका दूध शिफा है।

६—ब असनाद सही इबन मसऊद सहाबी रसूल अल्ला से रिवायत की गई कि गाय के दूध में शिफा है।

७—अलातबरी ने जहीर से रिवायत की है कि—गाय का गोश्त बीमारी, उसका मक्खन दवा और उसका दूध शिफा है।

८—किताब 'मसतदरक' में अबू अब्दुल्ला हाकिम ने इबन सऊद सहाबी रसूल अल्ला से रिवायत की है कि—तुम्हारे लिये गाय का दूध इस्तेमाल करना जरूरी है उसके गोश्त से दूर भागो और परहेज करो, इसलिये कि उसके दूध में शिफा मक्खन में दवा और गोश्त में बीमारी है।

मुसलमानों के पैगम्बर हजरत मुहम्मद ने गाय के दूध, घी और मक्खन के गुणों को जितने गम्भीर शब्दों में बताया है और गऊ माँस को स्वास्थ्य के

लिए जितना हानिकारक फरमाया है वह इन लिखी हदीसों से भली भांति विदित हो रहा है।

आश्चर्य है कि रसूल इस्लाम तो गौ का इतना आदर करें और उन लाभों को जो गाय के अन्दर पाये जाते हैं—इस प्रकार खुले शब्दों में गुणगान करें, परन्तु उनको पैगम्बर मानने का दावा करने वाले भारतीय मुसलमान, गाय का इतना अपमान करें जितना कि वे कर सकते हैं।

रसूल तो गाय का मांस खाने का निषेध करें इसलिए कि इसमें हानि के सिवाय लाभ नाम मात्र को नहीं है और इसके सेवन करने से भिन्न भिन्न रोग उत्पन्न होते हैं इसके विरुद्ध गाय के दूध और मक्खन के सेवन की ताकीद फरमावें और यह ताकीद करें कि वह रोग को नष्ट करके मनुष्य के स्वास्थ्य को स्थिर रखता है। बीमारी पास नहीं आने देता और केवल शिफा ही शिफा अर्थात स्वास्थ्यकर ही स्वास्थ्यकर है। मेरे मुसलमान भाई रसूल की इस इच्छा का जैसा कुछ सत्कार कर रहे हैं, उसका थोड़ा बहुत अनुभव गौओं की उस संख्या से किया जा सकता है जो प्रत्येक दिन देश के कोने कोने में बध की जाती हैं।

कहने को मुसलमान बड़े धर्म परायण हैं, धर्म के नाम पर मरने और मार डालने को सदैव तैयार दिखाई देते हैं—परन्तु धर्म से उनका सारा प्रेम बस! इतना ही रह गया है कि रसूल की इच्छा का विरोध करें। रसूल अल्ला गाय के गोश्त को रोगों का घर बतावें और वे हठ पर आकर गो-मांस ही अधिक खावें। रसूल गाय के दूध को दवा बतावें तो वे उसे विष से कमर्फे न समझें और यदि मक्खन को शिफा फरमावें तो वे उसको कभी सूँघने तक की कोशिश न करेंगे। यदि मुसलमान भाइयों को रसूल की आज्ञा का ध्यान होता तो गो-बध पर इस तरह अड़े न रहते और हिन्दुओं की मुरव्वत में न सही, केवल इस लिये गोवध बन्द कर देते कि रसूल की इच्छा भी ऐसी ही थी। इस वक्त रसूल के नाम पर मर मिटने वाले मुसलमान अपने रसूल की आज्ञा का दो तरह घोर विरोध कर रहे हैं। एक ओर गौ-मांस अधिकता से खाने में और दूसरी ओर गायों की संख्या कम हो जाने के कारण दूध और मक्खन के न खाने के रूप में—जिसे रसूल इस्लाम ने दवा और शिफा बताया है।

बड़ा आश्चर्य है कि मुसलमान भाई क्यों हठ में पड़े हैं, और क्यों गो-बध करके रसूल की आज्ञा भङ्ग कर रहे हैं? एवं वे क्यों हिन्दुओं का विरोध करके इस हठ के पीछे रसूल की इच्छामय आज्ञा ठुकराने को तैयार हो रहे हैं?

क्या ही अच्छा हो यदि मुसलमान अपने रसूल इच्छामय आज्ञा का आदर करें। इसमें उनके लिये दुनियाँ और दीन दोनों की भलाई है। इस प्रकार एक ओर रसूल की आज्ञा का पालन हो जावेगा और दूसरी तरफ मनुष्य समाज का भी बड़ा लाभ पहुँचेगा जिसमें मुसलमान भी बराबर के हिस्सेदार हैं।

मेरे इस लेख को हर गो रक्षक पत्र छापकर गो-रक्षा के उद्देश्य को सहायता पहुंचा सकता है।

• ———

जिस प्रकार एक मूर्ख माली पौदों को बार बार काट कर उसे बढ़ने नहीं देता है। उसी तरह मूर्ख मनुष्यों द्वारा बच्चों का हर समय विरोध हो और उन्हें अपनी आंतरिक न्याय बुद्धि को व्यवहार में लाने का अवसर न दिया जाय तो उनके लिए दुर्बल तथा परावलम्बी के सिवाय और कुछ बनना असम्भव है।

× × ×

जो भविष्य में महान प्रभावशाली और प्रतिष्ठित पदों पर पहुंचना चाहते हैं। उन्हें निश्चय से अपने व्यक्तित्व को दृढ़ करना होगा। व्यक्तित्व को बनाना होगा।

——

भक्ति का सच्चा स्वरूप

(म० म० श्रीगोपाल शास्त्री, दर्शन केशरी काशी)

आजकल लोगों में भक्ति का स्वरूप यही प्रसिद्ध है कि संसार के सभी कार्यों से विरक्त होकर साधु बन किसी तीर्थ में निवास करना और रात दिन हाथ में माला लेकर भगवान् का नाम जपना, मन्दिरों में दर्शन करते फिरना, आज अमुक मन्दिर में शृङ्गार है तो कल अमुक मन्दिर में झांकी होगी। इन्हीं उत्सवों में अपने को दिन रात फँसाये रखना. जगत का कोई काम नहीं करना। इसी समाज को आजकल भक्त समाज कहते हैं। सिर्फ भगवान् की भक्ति का ही पेशा करने वाला एक बड़ा भारी गिरोह है. जिसे वैरागी साधु समाज कहते हैं। आज तो उत्तम भक्त वही कहा जाता है जिसकी चर्चा होती हो कि-"सेठजी तो बड़े भक्त आदमी हैं। उनको संसारी जीवों से क्या मतलब, वह तो रात दिन भगवान् के पूजन, दर्शन में ही लगे रहते हैं उनके समान भक्त आज दुनियां में कोई नहीं है" इत्यादि।

ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक प्रतीत होता है कि भक्ति शास्त्रों में भक्ति का क्या स्वरूप बतलाया गया है, इस पर कुछ प्रकाश डाला जाय। भागवत के तृतीय स्कन्ध में भक्ति योग के स्वरूप का दिग्दर्शन स्वयं कपिल जी ने अपनी माता देवहूति से किया है।

> अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा।
> तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चा विडम्बनम् ॥
> यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
> हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥
> अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयाऽनघे।
> नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ॥
> अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्।
> अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याऽभिन्नेन चक्षुषा ॥
> (भागवत ३।२९।२१।२७)

अर्थ—मैं तो सभी प्राणियों में जीव रूप से बैठा ही रहता हूं, परन्तु अल्पज्ञ मानव वहाँ मेरा अपमान करके झूंठे मन्दिरों में पूजा करता फिरता है। जो सब प्राणियों में रहने वाले ईश्वर को छोड़ कर मूर्खतावश मन्दिरों में शृङ्गार, झांकी देखता फिरता है, वह तो भस्म में हवन के समान व्यर्थ काम करता है। जो प्राणियों के उपकार को छोड़कर उलटे उनका तिरष्कार करता है और बड़ी बड़ी सामिग्रियों से मन्दिरों में मेरा पूजा करता फिरता है. मैं उस पर कभी भी प्रसन्न नहीं होता। इस लिये सब प्राणियों में रहने वाले मुझको दान तथा सत्कार द्वारा पूजन करे। अर्थात् जीवों का उपकार करे, उनको सन्तुष्ट करे। महाभारत में भी एक जगह लिखा है—

> आहाय निजं कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः।
> ते हरे र्द्वेषिणः पापाः कर्मार्थं जन्म यद्धरेः ॥

अर्थ—जो अपने कर्तव्य कर्मों को छोड़ कर केवल कृष्ण कृष्ण जपा करते हैं वे तो भगवान् के द्वेषी हैं, क्यों कि भगवान् का भी तो अवतार कर्म करने के लिये होता है।

वास्तुतः भगवान् की सच्ची भक्ति तो अपने कर्तव्यों का पूरे तौर से पालन करना ही है। इसी बात को सभी शास्त्रों में स्पष्टतः कहा है। योग सूत्र भाष्य में व्यासजी ने 'तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः" (२ १) इस सूत्र का भाष्य करते हुए ईश्वर प्रणिधान' शब्द का अर्थ यों किया है, "तस्मिन् परम गुरौ परमेश्वरे स्वकृत कर्मणां फल समर्पणम् ईश्वर प्रणिधानम्।" अर्थात् उस परम

पिता परमात्मा को अपने कर्तव्य कर्मों द्वारा सन्तुष्ट करना ही तो ईश्वर प्रणिधान ईश्वर भक्ति है। इसी बात को गीता ऐसे उपनिषत्सार ग्रन्थ में स्वयं भगवान् कहते हैं—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दन्ति मानवः॥

जिस ईश्वर से सभी प्राणियों की पैदायश है और जिसने इस सारे पसारे को फैलाया है, अपने कर्तव्य कर्मों से ही उसकी पूजा करके मनुष्य सिद्धि पा सकता है। सभी शास्त्रों का निचोड़ रूप यों कहिये तो अपने कर्तव्य कर्मों को पूरी तौर से सम्पादन करते हुए सभी प्राणियों का यथा शक्ति उपकार करते रहना, यही भक्ति का सच्चा स्वरूप मेरी दृष्टि में प्रतीत होता है।

भागवत के एकादश स्कन्द में श्री कृष्णजी उद्धव से कहते हैं कि—

सर्वभूतेषु यः पश्यद्भगवद्भाव मात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्यष भागवतोत्तमः॥ २।४५
गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति।
विष्णोर्मायामिदं पश्यन् सवै भागवतोत्तमः॥ २।४८
वेदोक्त मेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे।
नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः॥ ३।४६
स्वकर्मस्था यजन् यज्ञैरनाशीः काम उद्धवः।
न याति स्वर्ग नरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत्॥ २०।२४

अर्थ—जो सभी प्राणियों में मुझे ही देखता है और सब प्राणियों को मेरे में ही देखता है वही मेरा (भगवान् का) सर्व श्रेष्ठ मित्र है। (४५) जो इन्द्रियों द्वारा सब कर्तव्य कर्मों को करता हुआ भी किसी से राग द्वेष नहीं रखता, संसार को भगवान् का ही पसारा समझता है वही श्रेष्ठ भगवद्भक्त कहता है। (४८) जो निःशङ्क होकर कर्तव्य रूप से अपने जिम्मे प्राप्त वेदोक्त कर्मों को ईश्वरार्पण बुद्धि से किया करता है वह अवश्य मुक्त होता है, कर्मों का जो फल बताया हैं वह तो सिर्फ कर्मों में प्रवृत्त कराने के लिये बढ़ावा दिया है। (४६) जो अपने कर्तव्य कर्मों पर दृढ़ रहता हुआ निःशङ्क होकर परोपकार, देशाभ्युदय साधन कर्मों (यज्ञों) को किया करता है, वह स्वर्ग नरक न जाकर मुक्त हो जाता है। कुछ भी न करे तो भी (२४) इत्यादि, भक्ति के प्रतिपादक ग्रन्थ भागवत में ही भक्ति का क्या स्वरूप बतलाया हैं, किन्तु आज कल हमारे देश में भक्ति का कैसा विकृत स्वरूप होगया है। यही कारण है कि देश आज दिनोंदिन पतित होता चला जारहा है। —सात्विक जीवन.

कुरान की शिक्षा।

(बन्दों के साथ नर्मी से पेश आओ!)

× × ×

रहमान के बन्दे तो वह हैं जो जमीन पर दीनता के साथ चलें और जब जाहिल उनसे जहालत की बातें करने लगें तो उनको सलाम करें।

—सूरे फुर्कान.

× × ×

अगर तुम किसी की मदद न कर सको तो झिड़को मत, नर्मी से समझादो।

—सूरे बनी इस्राईल.

× × ×

लोगों से बरूखी के साथ न बोलो और न जमीन पर इतराकर चलो। अपनी चाल सीधी रक्खो और धीरे से बोलो, क्योंकि आवाजों में बुरी से बुरी आवाज गधों की होती है।

—सूरे लुकमान.

× × ×

प्रेम भाव बढ़ाइए !

[पं० त्रिलोकनाथ शर्मा, मेमोरा]

गत मास हमें खुश्की के रास्ते देशाटन करने का अवसर प्राप्त हुआ। हम तीन आदमी साथ थे, तीनों ही ब्राह्मण पर गोत्र और शाखाओं में अन्तर था। यात्रा में हम तीनों अलग अलग भोजन बनाते खाते जारहे थे। एक दिन हमारे एक साथी पं० बद्रीप्रसादजी तिवारी रसोई तैयार करके थोड़ी देर के लिए कहीं बाहर गये और चौके की निगरानी के लिए मुझे बिठा गये। इतने में हमारे दूसरे साथी पं० माताबदल तिवारीको जल की आवश्यकता हुई, उन्होंने पास के चौके में से जल का पात्र उठा लिया बद्रीप्रसादजी वापिस आये और उन्होंने अपना जल पात्र चौके से बाहर देखा तो आग बबूला हो गये। हम दोनों को उन्होंने भरपेट अपशब्द कहे और तैयार रसोई को उठाकर चौके बाहर फेंक दिया। कलह बढ़ा। सबका भोजन पड़ा रहा। आपस की बोलचाल बन्द होगई, तीसरे दिन तक किसीने अन्नप्राशन न किया। चौका छू जाना कोई मामूली पाप थोड़े ही था वैसे दोनों ब्राह्मण-तिवारी थे, पर गोत्रों में तो अन्तर था। एक गोत्र का ब्राह्मण दूसरे गोत्र के ब्राह्मण को जलपात्र छू जाने दे। हरे राम! यह तो सात पुश्त को नरक में ठेल देने वाला अधर्म था। लड़ाई होनी ही चाहिए थी।

तीसरे दिन किसी प्रकार कलह शान्त हुआ। अब हम लोगों में प्रतिदिन इस चौका चूल्हे की समस्या पर ही वार्तालाप होने लगा। शान्तचित्त से जितना जितना 'चौकाधर्म' पर हम लोग विचार करते गये उतना ही उसका खोखलापन प्रतीत होता गया। विचार विनिमय ने भाई को भाई से दूर रखने वाली इस अविद्या और अज्ञान से भरी हुई कुप्रथा को छोड़ देने के लिए मजबूर कर दिया। अब हम लोग एक साथ भोजन बनाने खाने लगे।

मनुष्य स्वभाव शास्त्र के ज्ञाता विद्वान् जानते हैं कि सह भोजन से किस कदर आत्मीयता एवं प्रेम में वृद्धि होती है। हम लोगों का प्रेम बढ़ा और पं० माताबदलजी की सुशीला कन्या का विवाह पं० बद्रीप्रसादजी के पुत्र के साथ होगया। अब हम लोगों में असाधारण प्रेम रहता है।

यदि निरर्थक कुप्रथाओं के खोखलेपन पर हम लोग विचार करके बुद्धि से काम लेते हुए प्रेम विस्तार का प्रयत्न करें तो निस्संदेह हमारे समाज में स्वर्गीय सुख शान्ति विराज सकती है।

विधवा-विवाह का प्रश्न ?

"हमारे देश में जो पतिभक्ति या पतिप्रीति है और थी, वह क्या है? वह केवल व्यक्तिविशेष के ऊपर ही प्रीति अथवा भक्ति नहीं थी और न है। वह व्यक्तिविशेष को अतिक्रम करके भी वर्तमान थी। वह 'पतित्व' नामक जो भागवत अस्तित्व है उसीके प्रति भक्त थी। व्यक्तिविशेष उपलक्ष मात्र था, मुख्य पतीत्व ही था। इसी कारण व्यक्ति के भले बुरे होने से भी भक्ति में घटा बढ़ी नहीं होती थी। सब स्त्रियों को पति बराबर ही पूज्य थे। यूरोपीय स्त्रियों की भक्ति या प्रीति व्यक्तिविशेष में ही स्थापित है, वह भाव तक नहीं पहुँचती। इसी कारण वहां पति नामक व्यक्ति विशेष के गुणदोषों के अनुसार उनकी भक्ति और प्रीति नियमित होती है। इससे वहां विधवाविवाह में दोष नहीं है। वहां की स्त्रियां भाव से विवाह नहीं करती व्यक्ति से विवाह करती हैं और इस हेतु व्यक्ति का अन्त होने पर पतीत्वका भी अंत हो जाता है, परन्तु हमारे देश के अधिकांश व्यक्तिगत सम्बन्ध इस प्रकार सुगंभीर भावों पर ही स्थित होने से व्यक्ति नष्ट होते हुए भी पतीस्वभाव अस्तित्व में रहता है, इसके कारण भारत में विधवाविवाह निषिद्ध माना जाता है।

— स्व० रवीन्द्रनाथ टैगोर.

खिन्न मत हूजिए !

आपको गरीबी ने घेर रखा है पैसे का अभाव रहता है. आवश्यक खर्चों की जरूरतें पूरी नहीं होतीं, आप दुखी रहते हैं, पर हम पूछते हैं कि क्या दुखी रहने से आपकी दरिद्रता दूर हो जायगी ? क्या इससे अधिक आमदनी होने लगेगी ? अगर आप समझते हैं कि 'हाँ! हो जायगी' तो आप भूल करते हैं।

आप कम पढ़े हैं विद्या पास नहीं है, बीमारी ने घेर रखा है, शरीर क्षीण होता जाता है, काम बिगड़ जाते हैं, सफलता नहीं मिलती, विघ्न उपस्थित हैं, वियोग सहना पड़ रहा है, कलह रहता है, ठगी और विश्वासघात का सामना करना पड़ता है. अत्याचार और उत्पीड़न के शिकार हैं या ऐसे ही किसी कारण वश आप खिन्न हो रहे हैं, चित्त उदास रहता है, चिन्ता सताती है, संसार त्यागने की इच्छा होती है, आँखों से आँसुओं की धारा बहती है। हम पूछते हैं कि क्या यही मार्ग इन दुःखद परिस्थितियों से बचने का है ? क्या आप शोक सन्ताप में डूबे रहकर इन कष्टों को हटाना चाहते हैं ? क्या खिन्न रहने से दुखों का अन्त हो जायगा ?

बीते कल की अप्रिय घटनाओं पर आँसू बहाना, आने वाले कल का ठीक वैसा ही बनाना है। भूत कालीन कठिनाइयों के त्रास से इस समय भी संतप्त रहना इसका अर्थ तो यह है कि भविष्य में भी उन्हीं बातों की पुनरावृत्ति आप चाहते हैं इसलिए उठिये खिन्नता और उदासीनता को दूर भगा दीजिए। बीते पर रोना इससे क्या लाभ? चलिये ! आने वाले कल का नये ढङ्ग से निर्माण कीजिये। शोक, सन्ताप, चिन्ता निराशा और उदासीनता का परित्याग करके प्रसन्नता को ग्रहण कीजिए।

उठिये, खड़े हूजिए और एक कदम आगे बढ़ाइए। प्रभु ने आपको रोने के लिए नहीं प्रसन्न रहने के उद्देश्य से यहाँ भेजा है। रूखी रोटी खाकर हँसिये और कल चुपड़ी खाने का प्रयत्न कीजिए। आज की परिस्थिति पर संतुष्ट रहिये और कल के लिये नया आयोजन कीजिए। खिन्न मत मत हूजिए, क्योंकि हम आपको एक दुख हरण गुप्त मन्त्र की दीक्षा दे रहे हैं। सुनिये ! विचारिये और गाँठ बाँध लीजिए कि "हँसता हुआ भविष्य, हँसते हुए चेहरे का पुत्र है।" जो प्रसन्न रहेगा उसे प्रसन्न रखने वाली परिस्थियाँ भी मिलेंगी।

तीन सिद्धि-मंत्र।

एक बार मेरे पास दक्षिण प्रान्त से मराठी भाषा में एक पत्र आया। उसे मुझे दूसरों से पढ़वाना पड़ा। साथ ही यह इच्छा उत्पन्न हुई कि इस भाषा को तो सीखना चाहिए। बस ! मैंने निश्चय किया और उसी दिन से मराठी पढ़ना आरम्भ कर दिया। तीन महीने में मैंने उस भाषा को अच्छी तरह सीख लिया और जो पत्र मेरे पास आया था, उसका उत्तर स्वयं मैंने अपने हाथों से मराठी में ही दिया। मित्रों ने पूछा कि क्या किसी जादू से आप इतनी जल्दी पढ़ गये ? मैंने कहा तीन मंत्र मुझे सिद्ध हैं उनकी सहायता से मेरे सब काम पूरे हो जाते हैं. वे तीन मंत्र हैं (१) दृढ़ इच्छा। (२) नियत समय पर काम करना (३) कठोर परिश्रम। इन मंत्रों से अन्य व्यक्ति भी मेरी ही भांति लाभ उठा सकते हैं।

राजाराम मोहनराम,

बादलों की तरह बरसते रहो।

(ऋषि तिरुवल्लुवर)

वे लोग अगले जन्म में राक्षस होंगे जो किसी को कुछ नहीं देते और पैसे को जोड़ जोड़ कर जमा करते जाते हैं। जिसने अपने घर में दौलत के ढेर जोड़ रखे हैं मगर उसका सदुपयोग नहीं करता उसे एक प्रकार का चौकीदार ही कहना चाहिये उसका जीवन पृथ्वी के लिए भार रूप है वेश की परवाह किये बिना निरन्तर धन के लिए ही हाय हाय करते हैं। जो न तो खुद खा सकता है और न दूसरों को दे सकता है चाहें वह करोड़पति ही क्यों न हो मामूली गरीब आदमी से उसमें कुछ विशेषता नहीं है। उचित अनुचित तरीकों से पेट कस कस कर जो धन जोड़ा गया है वह उसके किसी काम न आवेगा उसका उपयोग तो दूसरे ही करेंगे। वह मनुष्य बुद्धिमान है जिसने अपना धन शुभ कर्मों में खर्च कर दिया है असल में वह बरसने वाले बादल के समान है जो आज खाली होता है तो कल फिर भर जावेगा।

मिलनसारी, भलमनसाहत का व्यवहार और दूसरों के हितों का खयाल रखना यह ऐसे गुण हैं जिनसे दुनियाँ अपनी हो सकती है। संसार उनकी इज्जत को भुला नहीं सकता जो अपने से छोटे और बड़ों के साथ शिष्टता का व्यवहार करते हैं।

कटुभाषी और निष्ठुर स्वभाव के मनुष्य का जीवन लोहे और काठ की तरह नीरस होता है चाहे वे भले ही आरी की तरह तेज हों। जिस कर्महीन मनुष्य को इतने लम्बे चौड़े विश्व में हँसने और मुसकराने योग्य कुछ दिखाई नहीं देता और सारे दिन कुड़कुड़ता रहता है, उसे उस रोगी की तरह समझना चाहिए जिसे दिन में भी नहीं दीखता। वद मिजाज व्यक्ति के पास चाहे कितनी ही विद्या और सम्पत्ति क्यों न हो वह उस दूध के समान निकम्मा है जो गन्दे पात्र में रखा होने से दूषित होगया है।

हरि कीर्तन।

(श्रीरामलालजी मलिक, कराची)

—(❀)—

'कीर्त्तन' शब्द को यदि उलटा कर दिया जाय तो वह शब्द 'नर्तकी' बन जाता है। इस जमाने में हर जगह उलटा चलन ही अधिक देखा जाता है। कीर्तन का वास्तविक तात्पर्य न समझ कर लोग उसका उलटा अर्थ करते हैं और 'नर्तकी' की तरह नाच कूद कर अपनी उचङ्ग पूरी करते हैं। ईश्वर कोई मनचला नवाब नहीं है, जिसे नाच रंग में मस्त रहने की सनक हो। वह अपने प्रिय पुत्रों को नर्तक नहीं धर्म प्रवर्तक बनाना चाहता है।

'कीर्तन' का तात्पर्य उन कर्मों के करने से है, जिससे प्रभु की कारीगरी की कीर्ति फैलती है, प्रशंसा होती है। हम किसी सुन्दर खिलौने को देखकर उसकी प्रशंसा करते हैं, वास्तव में वह प्रशंसा जड़ खिलौने की नहीं वरन् उस कुम्हार की है जिसने उसे बनाया है। विद्वान्, धर्मात्मा, तपस्वी, उद्धारक, धर्म प्रवर्तक, अक्सर अवतार कहे जाते हैं, उनमें ईश्वरीय अंश बताया जाता है। वैसे तो हर मनुष्य में ईश्वरीय अंश है और आत्मा-परमात्मा का अवतार है। पर किसी विशेष व्यक्ति को अवतारी पुरुष करने का तात्पर्य उसके सद्गुणों के निमित्त कर्ता की प्रशंसा करना है। किसी भले आदमी को देखकर उसे अनायास ही 'ईश्वर का प्यारा', 'ईश्वर की पुण्य कृति' 'ईश्वर का कृपा भाजन' आदि शब्द कहते हैं। इन शब्दों का मर्म अर्थ ईश्वर की प्रशंसा करना उसकी कीर्ति बढ़ाना है।

हम अपना आचरण, विचार, कर्म, व्यवहार एवं स्वभाव इस प्रकार का बनाना चाहिए, जिससे सर्वत्र हमारी प्रशंसा हो। हमारी भलमनसाहत, नेकी, ईमानदारी, सेवा वृत्ति, नम्रता, परमार्थ प्रियता, त्याग भावना की सुगन्ध चारों ओर उड़ती फिरे। वह कीर्ति असलमें हमारे जड़ शरीर को नहीं वरन् उसके कर्ता आत्मा की, परमात्मा की है। यही सच्चा कीर्तन है। इस उलटे जमाने में 'नर्तकी' बनने वाले बहुत हैं पर 'कीर्तन' करने वाले विरले ही दिखाई पड़ते हैं।

प्रेम भाव बढ़ाइए !

(पं० त्रिलोकनाथ शर्मा, भेभौरा)

—(❀)—

गत मास हमें खुश्की के रास्ते देशाटन करने का अवसर प्राप्त हुआ। हम तीन आदमी साथ थे, तीनों ही ब्राह्मण पर गोत्र और शाखाओं में अन्तर था। यात्रा में हम तीनों अलग-अलग भोजन बनाते खाते जा रहे थे। एक दिन हमारे एक साथी पं० बद्रीप्रसादजी तिवारी रसोई तैयार करके थोड़ी देर के लिए कहीं बाहर गये और चौके की निगरानी के लिए मुझे बिठा गये। इतने में हमारे दूसरे साथी पं० माताबदल तिवारी को जल की आवश्यकता हुई, उन्होंने पास के चौके में से जल का पात्र उठा लिया, बद्रीप्रसाद जी वापिस आये और उन्होंने अपना जल पात्र चौके से बाहर देखा तो आग-बबूला होगये। हम दोनों को उन्होंने भर पेट अपशब्द कहे और तैयार रसोई को उठाकर चौके बाहर फेंक दिया। कलह बढ़ा सब का भोजन पड़ा रहा। आपस की बोलचाल बन्द होगई, तीसरे दिन तक किसी ने अन्न ग्रास न किया। चौका छू जाना कोई मामूली पाप थोड़े ही था, वैसे दोनों ब्राह्मण तिवारी थे, पर गोत्रों में तो अन्तर था। एक गोत्र का ब्राह्मण दूसरे गोत्र के ब्राह्मण को जल-पात्र छू जाने दे। हरे राम! यह तो सात पुश्त को नरक में ठेल देने वाला अधर्म था। लड़ाई होनी ही चाहिए थी।

तीसरे दिन किसी प्रकार कलह शान्त हुआ। अब हम लोगों में प्रति दिन इस चौका चूल्हे की समस्या पर वार्तालाप होने लगा। शान्त चित्त से जितना-जितना "चौका धर्म" पर हम लोग विचार करते गये, उतना ही उसका खोखलापन प्रतीत होता गया। विचार विनिमय ने भाई को भाई से दूर रखने वाली इस अविद्या और अज्ञान से भरी हुई कुप्रथा को छोड़ देने के लिए मजबूर कर दिया। अब हम लोग एक साथ भोजन बनाने खाने लगे। मनुष्य-स्वभाव शास्त्र के ज्ञाता विद्वान् जानते हैं, कि सह भोजन से किस कदर आत्मीयता एवं प्रेम में वृद्धि होती है। हम लोगों का प्रेम बढ़ा और पं० माता बदल जी की सुशीला कन्या का विवाह पं० बद्रीप्रसाद जी के पुत्र के साथ होगया। अब हम लोगोंमें असाधारण प्रेम रहताहै।

यदि निरर्थक कुप्रथाओं के खोखलेपन पर हम लोग विचार करके बुद्धि से काम लेते हुए प्रेम विस्तार का प्रयत्न करें तो निस्सन्देह हमारे समाज में स्वर्गीय सुख शान्ति विराज सकती है।

———

छोटों की सहायता।

एक बार हमारा एक नौकर काशीनाथ बीमार हुआ उसे प्लेग की गिल्टी निकल आई। वह चुपचाप अस्पताल को चला गया और सरिश्तेदार को एक पत्र लिख दिया कि "जजसाहब को खबर न होने पावे, वरना वे मेरे लिए बहुत चिन्ता करेंगे। फिर भी मेरी पत्नी को किसी प्रकार पता चल गया और हम लोग उसकी सेवा सुश्रूषा करने अस्पताल नित्य जाने लगे। हमारे एक मित्र ने कहा-छोटे नौकर के लिए हाईकोर्ट के प्रधान जज को इतनी दौड़ धूप करना उचित नहीं। मैंने हँसते हुए कहा—जज होने से पहले मैं मनुष्य हूँ और मनुष्य का धर्म है कि अपने से छोटे व्यक्तियों की शक्ति भर सहायता करे।

—जस्टिस्ट महादेव गोविन्द रानाडे।

———

अकड़ कर मत चला करो, क्यों कि न तो तुम जमीन को फाड़ सकोगे और न पहाड़ों की बराबर लम्बे हो सकोगे।

—सूरेबनी इस्राईल,

× ×

ए बन्दो! अपने मुखालिफों से भी मीठी बात करो क्यों कि बदकलामी से किसी का दिल दुखाना शैतान का काम है।

—सूरेबनी इस्माईल,

———

वैद्यजी की समझ

(श्री स्वामी दरबारीलाल जी 'सत्य भक्त')

वैद्य जी अपने नगर के प्रसिद्ध वैद्य थे और थे धर्म धुरन्धर, वर्णाश्रम धर्म की पद पद पर दुहाई देने वाले, हर एक रूढ़ि के समर्थक।

एक दिन उनके एक मित्र आये। वे सुधारक थे। उससे उनकी झड़प होगई। सुधारक जी ने बहुत कहा कि रिवाजों को, धर्म के बाहरी व्यवहारों को, हमें समय २ पर बदलना पड़ता है। जो नया है, ताजा है, वह लिया जाता है, पुराना होने पर, सड़ जाने पर, निस्सार होने पर छोड़ दिया जाता है इसमें विरोध क्या है?

वैद्य जी का पक्ष था कि जो अच्छा है वह सदा अच्छा है, वह कभी बुरा क्यों होगा? एक बार जो ग्रहण किया वह कभी अलग न करना चाहिए।

वैद्य जी की श्रद्धा इतनी अटल थी कि कोई भी युक्ति उनकी समझ में न आती थी।

इतने में एक बाई अपने बच्चे को लेकर आई। बाई की शिकायत थी, कि यह बच्चा परसों से टट्टी नहीं जा रहा है।

वैद्य जी ने बच्चे से पूछा - क्यों रे, टट्टी क्यों नहीं जा रहा है?

कुछ देर तक बच्चा चुप रहा, फिर बोला-मैंने परसों मिठाई खाई थी।

वैद्य जी 'अरे तो मिठाई खाने से क्या हुआ? क्या मिठाई खाने के बाद टट्टी जाना नहीं पड़ता?'

बच्चे ने जरा सहमते हुए कहा—जी मिठाई बार-बार नहीं मिलती, इसलिए मैं चाहता हूँ पेट की मिठाई क्यों निकालूं।

—"अरे मूर्ख क्या अभी तक मिठाई पेट में ही बनी रही? उसका तो जो जरूरी हिस्सा था वह शरीर में मिल गया, बाकी तो विष्ठा होगया। अब मिठाई कहां रही?"

—जी, परसों तो वह मिठाई ही थी।

—अरे तो परसों परसों है, आज आज है, क्या कोई चीज सदा एकसी बनी रहती है? जा, यह दवा लेजा और टट्टी चला जाना?

यह कह कर वैद्यजी ने एक हल्कासा जुलाब दे दिया।

मित्र ने कहा—वैद्यजी आप दूसरों को जुलाब देते हैं, खुद नहीं लेते?

वैद्य जी ने निष्प्रतिभ होकर कहा—बस भाई, अब मैं समझ गया। अब मैं भी जुलाब ले लेता हूँ।

—नई दुनियां.

हिटलर का पतन सन् १९४३में

एक अफ्रीकन पत्र की भविष्यवाणी!

उत्तरी अफ्रीका के पत्र 'ओरान रिपब्लिकन' ने १९४३ में हिटलर की पराजय की, ऐतिहासिक घटनाक्रम को देखकर भविष्यवाणी की है।

१७८९ में फ्रेंच क्रांति हुई थी और उसके १२९ वर्ष बाद १९१८ में जर्मनी में विद्रोह हुआ। १८०४ में नेपोलियन का उत्कर्ष युग था और १२९ वर्ष बाद १९३३ में हिटलर का। १८१२ ई० में नेपोलियन ने रूस पर चढ़ाई की और १२९ वर्ष बाद १९४१ में हिटलर ने रूस पर आक्रमण किया। १८१४ में नेपोलियन का पतन हो गया और १२९ वर्ष बाद १९४३ में संसार हिटलर-युग की समाप्ति देखेगा।

नेपोलियन ने १० वर्षों तक [१८०४ से १८१४ तक] यूरोप पर विजय दुंदुभि बजाई—और हिटलर का सितारा भी १० वर्ष चमकेगा—१९३३ से १९४३ तक।

इन अवतारों से सावधान !

(श्रीरामशरणदासजी पिलखुआ)

आज कितने ही मन चले लोग अपने को कल्की भगवान बताकर असंख्य अज्ञान जनता को अपने जाल में फांस चुके हैं। अभी उस दिन पिलखुआ में एक बड़ी मजेदार बात हुई। एक पढ़े लिखे मुसलमान सज्जन लम्बी दाड़ी बढ़ाये, तुर्की टोपी लगाये, हमारे स्थान पर पधारे। दुआ सलाम के पश्चात् उन्होंने कहा—लालाजी, आपने एक नई बात सुनी है ? मैंने कहा—सुनाइये क्या नई बात हुई। उन्होंने कहा—"श्रीकृष्ण भगवान कल्की अवतार बनकर आगये हैं। उनका वर्तमान नाम गुलाम अहमद मुसलहमऊद है और लाहौर में बिराजे हैं। लाखों हिन्दू और मुसलमान उनके भक्त हैं। बड़े बड़े पंडित उनके शिष्य बन गए हैं वे धर्म की रक्षा करेंगे और बड़े बड़े काम करेंगे जो पहले अवतारों ने किए हैं। उन्हें हिन्दू और मुसलमान सब एक से हैं वह दो नहीं समझते।"

मैं उन सज्जन का मतलब समझ गया। वे उन कलियुगी कल्कि के प्रचारक थे और शायद मुझे अपने चंगुल में फँसाना चाहते थे। समदर्शीपन की परीक्षा लेने के लिए मैंने कहा—खाँसाहब, यदि ऐसा है तब तो बड़ी खुशी की बात है। भगवान् एक हैं, और वे ही नानारूपों में अवतार लेते रहते हैं। इन लाहौर निवासी अवतार ने पहले मत्स्य, कच्छप, बाराह आदि में अवतार लिया होगा ? उन्होंने पूछा मत्स्य, कच्छप, बाराह का मतलब मैं नहीं समझा, हिन्दी में कहिए। मैंने उन्हें बताया कि 'मत्स्य, मछली को, कच्छप कछुआ को और बाराह सूअर को कहते हैं। हमारे भगवान पहले इन शरीरों में भी अवतार ले चुके हैं।

'सूअर' का नाम सुनते ही खाँसाहब बहुत बिगड़े। उनके कहा 'तोबा, तोबा' आपने किसका नाम ले दिया, हमारे यहां तो उसका नाम लेना भी गुनाह है। हजरत मऊद साहब ने हर्गिज़ ऐसा नापाक अवतार न लिया होगा। मैंने कहा—तो फिर उन्होंने कृष्ण का भी अवतार न लिया होगा और न अब कल्कि ही हो सकते हैं। अपनी दाल गलती न देखकर खाँ साहब कुड़कुड़ाते हुए उठकर चले गये।

भाइयो ! इन अवतारियों से सावधान !

बाइबिल की वाणी।

[नेकी की राह पर चलो]

हे वीर, तू बुराई करने पर क्यों बड़ाई मारता है। ईश्वर की करुणा तो लगातार बनी रहती है। तेरी जीभ दुष्टता गढ़ती है। सान धरे हुए छुरे की नाईं वह छल का काम करती है तू भलाई से बढ़कर बुराई में और धर्म की बात से बढ़कर झूंठ में प्रीति रखता है। सो हे छली जीव वाले ! तू सब विनाश करने वाले वचनों में प्रीति रखता है। निश्चय ईश्वर तुझे सदा के लिए नाश कर देगा।

भजन संहिता ५२। १, ५।

× × ×

हे प्रभु ! दयावन्त के साथ तू अपने को दयावन्त दिखाता, खरे मनुष्य के साथ तू अपने को खरा दिखाता है शुद्ध के साथ तू अपने को शुद्ध दिखाता है और टेढ़े के साथ तू तिरछा बनता है, क्यों कि तू दीन लोगों को तो बचाता है, पर घमंड भरी आँखों को नीची करता है।

भजन संहिता १८। २५, २७।

अपने प्रभु की खोज

(रचयिता-श्रीयुत् ज्वालाप्रसादजी ज्योतिषी)

अजी, बहुत लड़-झगड़ हुई, अबतो बचपन बीता, छोड़ो,
उन बात-बात पर लड़ने की चालों से अब तो मुंह मोड़ो !
जब बच्चे थे, तब बच्चे थे, अब तो वे बीत चुकी बातें,
कुछ तो समझो, कुछ तो परखो, इनकी बातें, उनकी घातें !
जीवन ! मानव जीवन क्या है कंकर, पत्थर से भी हलका !
जो खेल-खेल में देते हो तुम यूं अपने हाथों ढलका ?
मन्दिर-मस्जिद की ईंटों में दृग मूंद खोजते हो जिसको,
आँखें खोलो, ढूंढ़ो दो पल, इस मानव-मन्दिर में उसको।
वह ऐसी कोई चीज नहीं जो अँधियाली में खो जावे,
बिजली वह है, जो बादल को खुद फाड़ सामने हो जावे।
तुम अपना धुंधला दीपक ले क्या खूब ! ढूंढ़ने चले उसे।
सूरज अपनी अंधियाली में है रखे छिपा कर स्वयं जिसे।
जर्रे जर्रे में जो बैठा पागल से उसे बुलाते तुम,
वह खड़ा सामने है लेकिन हो आंख मीच चिल्लाते तुम।
मन्दिर में जाते हो जिस पर सोने के फूल चढ़ाने को,
उसकी बेटी दरवाजे पर रोती मुट्ठी भर दाने को।
वे निश्चल प्रतिमायें धो-धो मन्दिर में तो कीचड़ कर दी,
कब इन सजीव प्रतिमाओं को, दो बूंदों की अञ्जलि पर दी ?
तुम इसको कहते हो मन्दिर औ, उसका नाम रखे मस्जिद,
क्या एक किसी में आने की लेकिन है प्रभुको भी कुछ जिद?
मैं कहता हूँ, मन्दिर-मस्जिद दोनों ही हुए आज खाली,
हैं बची वहां हम दोनों की केवल करतूतें ही काली।
इन दोनों के ही बीच कहीं मानवता की कुटिया होगी,
ढूंढ़ो-ढूंढ़ो मिल जायेगा वह जूठे बेरों का भोगी।
इन महलों की प्रभुता, में भी होता है प्रभु का बास कहीं ?
वह तो उतरा उन कुटियों में जिनमें है विभव विलास नहीं।
मुसकाता हो शायद बैठा वह यहीं कहीं खलिहानों में,
हल जोत रहा होवे या उन कृषकों में छिप मैदानों में।
अपने उस युग-युग से खोये प्रभु को ढूंढ़ो दोनों मिलकर,
दोनों से खीज गया है वह इन दैनिक झगड़ों से चिढ़ कर।

प्रकाशक—श्रीराम शर्मा "अखण्ड-ज्योति" कार्यालय, मथुरा।
मुद्रक—पं० पुरुषोत्तमदास मुरलीधर शर्मा, "हीरा मशीन प्रेस", मथुरा।

मनुष्य को देवता बनाने वाली पुस्तकें

जो ज्ञान युगों के प्रयत्न से मिलता है, उसे हम अनायास ही आपके समाने उपस्थित करते हैं।
यह बाजारू किताबें नहीं है, इनकी एक एक पंक्ति चिर कालीन अनुभव के आधार पर लिखी गई हैं !!

(१) मैं क्या हूँ ?—इस पुस्तक में आत्मा के स्वरूप, गुण, धर्म, कर्म, स्वभाव का बड़ी सरल सुबोध भाषा में वर्णन किया गया है, जिससे आत्म ज्ञान की गंभीर जानकारी हो जाती है। साथ ही कुछ ऐसे सुगम साधन बताये गये हैं जिनको दस-पांच मिनट भी नित्य किया जाय तो सूर्य के समान तेजस्वी आत्मा का प्रत्यक्ष दर्शन होने लगता है। मूल्य ।=)

(२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान—सूर्य किरणों की सहायता से कठिन से कठिन असाध्य रोग भी अच्छे हो सकते हैं, इस पुस्तक में सूर्य की किरणों में से आवश्यकीयतत्व खींच कर बिना कौड़ी खर्च की दवा तैयार करना, रोगों का निदान चिकित्सा आदि सब बातों पर विस्तार पूर्वक लिखा गया है। जिससे मामूली पढ़ा लिखा आदमी कुछ ही दिनों में घर बैठे डाक्टर बन सकता हैं और सैकड़ों रोगियों को जीवन दान सकता है। मूल्य ।=)

(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान—मनुष्य के शरीर में गजब की विद्युत शक्ति भरी हुई हैं। मैस्मरेजम के ढंग पर उस बिजली का प्रयोग करके समस्त रोगों का इलाज करने की विधि इस पुस्तक में बताई गई है। झाड़, फूंक की प्राचीन तन्त्र पद्धति की वैज्ञानिक विवेचना के साथ योरोपीय विद्वानों ने इस विधि का निर्माण किया है, विदेशों में बड़े बड़े अस्पताल इस पद्धति से चल रहे हैं। मूल्य ।=)

(४) परकाया प्रवेश—प्राण शक्ति की साधना करने से एक मनुष्य का प्राण दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता है मैस्मरेजम के ढंग पर अपनी आत्म शक्ति से दूसरों में प्रभावित करने, उन्हें अपना इच्छानुसार चलाने, बेहोश कर देने, विचार बदल देने की विद्या इस पुस्तक बताई गई है। जो रहस्य जन्म भर योगियों की सेवा करने पर भी प्राप्त नहीं होते उन्हें इस पुस्तक में दर्पण की तरह खोलकर रख दिया गया है। मू० ।=)

(५) स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या—कीमती बढ़िया भोजन करने पर भी शरीर बलवान नहीं [illegible] कुरूपता नहीं जाती, किन्तु आध्यात्मिक साधनाओं द्वारा मन चाहा स्वास्थ्य और इच्छित सुन्दरता प्राप्त की जा सकती है। इस पुस्तक में इन आध्यात्मिक तथ्यों को समझाया गया है, जिनसे स्वास्थ्य और सौन्दर्य को हर मनुष्य प्राप्त कर सकता है। मू० ।=)

(६) मानवीय विद्युत के चमत्कार—मनुष्य शरीर की बिजली से भी वैसे ही आश्चर्यजनक कार्य हो सकते हैं जैसे कारखाने की बिजली से होते हैं। शरीर की बिजली के बारे में ठीक ठीक जानकारी न रखने के कारण लोग भयंकर दुख भोगते हैं, यदि उनके उपयोग की विधि ज्ञात हो तो दीर्घ जीवन, निरोगता, मानसिक शान्ति, प्रफुल्लता, सद्बुद्धि आदि अनेक शारीरिक मानसिक लाभ प्राप्त हो सकते हैं। इस पुस्तक को पढ़ने से वे सब गुप्त बातें भली प्रकार समझ में आजाती हैं। मू० ।=)

(७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान—स्वरोदय विद्या भगवान शंकर द्वारा आविष्कारित है। इस विद्या की सहायता से भूत भविष्यत वर्तमान की बातों को जानना खोई हुई वस्तुएं, हानि, लाभ, सफलता, असफलता, मृत्यु-ज्ञान आदि सब बातों को ठीक ठीक जाना जा सकता है। इन विद्या के सहारे ज्योतिषके सारे काम होसकते हैं। मू० ।=)

(८) भोग में योग—प्रमेह, स्वप्नदोष, धातु का पतला होना शीघ्र पतन, नपुंसकता आदि सत्यानाशी रोगों को जड़ से खो देने की क्रियाएं इस पुस्तक में बताई गई हैं। जितनी देर चाहें उतनी देर स्तम्भन शक्ति कायम रखने की ऐसी गुप्त विधियां इस पुस्तक में लिखी हैं जो हजारों रुपये को भी सस्ती हैं। गुप्त रोगों को दूर करने के लिये पुस्तक कल्पवृक्ष के समान है। इसमें बताई हुई विधियों से हजारों का भला हुआ है। मूल्य ।=)

(९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय—मनुष्य जीवन में बुद्धि का ही मूल्य है। धन, यश, ऐश्वर्य, विद्या, पद, सुख, स्वर्ग सब कुछ बुद्धि द्वारा ही प्राप्त होता है। इस किताब में वैज्ञानिकों के घोर अनुसन्धानों द्वारा आविष्कृत ऐसे

बुद्धि एवं कमजोर मस्तिष्क वाला मनुष्य भी बुद्धिमान बन सकता है। उपाय सरल बहुत ही लाभदायक है। मू० ।=)

(१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य— जिन उपायों का अवलम्बन करके गरीब आदमी बड़े बड़े धन कुबेर बन गये हैं वे ही उपाय इस पुस्तक में बताये गये हैं। गरीब से धनी बनने वाले अनेक व्यक्तियों के उदाहरण भी इस किताबमें हैं। धनी बनने की इच्छा रखने वालों के लिये यह बड़े काम की वस्तु है। मू० ।=)

(११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि— कुछ समय पूर्व ऐसा समझा जाता था कि पुत्र या पुत्री होना भाग्य की बात है. परन्तु अब डाक्टरों ने अपने असंख्य परीक्षणों के बाद यह साबित कर दिया है, कि मनचाही सन्तान प्राप्त करना पूर्ण रूप से मनुष्य के हाथ में है। जो उपाय बहुत परीक्षाओं के बाद खरे उतरे हैं उन्हीं का संकलन इस किताब में है। मू० ।=)

(१२) वशीकरण की सच्ची सिद्धि— इस किताब में जादू टोना नहीं है वरन् ऐसे सद्गुणों और स्वभावों की शिक्षा है जिनको अपनाने वाला मनुष्य सर्व प्रिय होजाता है और दूसरे लोग उसके बे पैसे के गुलाम हो जाते हैं। भलमनसाहत, नेकी, ईमानदारी, नम्रता, त्याग, प्रेम द्वारा कठोर से कठोर हृदय वालों को भी कैसे अपने वशमें किया जा सकता यही सब बातें इसमेंहैं। मू०।=)

(१४) मरने के बाद हमारा क्या होता है? मृत्यु के उपरान्त प्राप्त होने वाले स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म, प्रेत योनि आदि की सम्पूर्ण स्थिति परिस्थिति का विस्तृत विवरण इस किताब में है। प्रेतात्माओं से वार्तालाप करने की विधियां, भूतों से बचने की युक्तियां आदि बहुत सी महत्वपूर्ण बातें इसमें लिखी हुईहैं। मू०।=)

(१४) जीव जन्तुओं की बोली समझना— मूक जीव जन्तुओं की भी स्वतन्त्र भाषा है। वे भी हमारी तरह आपस में वार्तालाप करते हैं। उस वार्तालाप को समझने से बहुत सी अज्ञात बातों का पता चलता है और अनेक रहस्य मय विषयों का ज्ञान हो जाता है, ऐसी किताब आज तक नहीं छपी। मू० ।=)

(१५) ईश्वर कौन है? कहां है? कैसा है? इस पुस्तकमें ईश्वर वादके प्रश्न पर दार्शनिक मनोवैज्ञानिक, तार्किक एवं धार्मिक दृष्टिकोणों से गम्भीर विवेचना की गई है। जिसे पढ़ने से, ईश्वर, मन्दिर, भक्ति, पूजा, ध्यान, उपासना, आस्तिकता, नास्तिकता, आत्मिक साधना

(१६) क्या धर्म क्या अधर्म?— क्या धर्म इसी सम्प्रदायिक कट्टरता को कहते हैं जिसके कारण आये दिन खून खराबी, दंगे फिसाद होते रहते हैं और भाई से भाई अलहदा होता जाता है? यह प्रश्न प्रत्येक समझदार मनुष्य को बेचैन कर रहा है। इस पुस्तक में धर्म, सम्प्रदाय, पंथ, प्रथा आदि धर्म के प्रत्येक पहलू पर आध्यात्मिक दृष्टि से तीव्र प्रकाश डाला है। जिससे धर्म का सच्चा स्वरूप सामने आजाता है और धर्म के नाम पर फैले हुए अधर्म की पोल खुल जाती है। मू० ।=)

(१७) गहना कर्मणो गतिः— भला काम करते बुरा फल और बुरा काम करते भला फल मिलते देखकर बुद्धि चक्कर खा जाती है निठल्लों को सुखी और परिश्रमी लोगों को जब दुखी देखा जाता है तो मन में बड़ी व्यग्रता उत्पन्न होती है। कर्मों का फल ईश्वर किस प्रकार देता है? पाप पुण्य का न्याय कौन करता है? ऐसी अनेक समस्याओं का इस किताब में ऐसी तरह हल किया गया है कि पढ़ने वाले को भली भांति संतोष होजाता है। मू०।=)

(१८) जीवन की गूढ़ गुत्थियों का तात्विक प्रकाश— हम कौन हैं? कहां से आये हैं? किधर जा रहे हैं? आगे हमारा क्या होगा? जीवन का उद्देश्य क्या है? मृत्यु क्या है? चौरासी लाख योनियों में क्यों घूमना पड़ता है? मुक्ति क्या है? जीवन का आरम्भ, विकास और अन्त कैसे होता है? इसमें जीवन सम्बन्धी प्रश्नों का तात्विक दृष्टि से हल किया गया है। इस ज्ञान को जाननेसे जीवन का महत्व समझमें आजाता है। मू०।=)

(१९) पंचाध्यायी— यह आधुनिक युग की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, मानसिक शारीरिक एवं धार्मिक समस्याओं पर व्यवस्था देने वाली गीता है। हमारे देश की दुरवस्था कैसे हुई? और भविष्य में नवीन भारत का निर्माण कैसे होगा? इसमें इन प्रश्नों का ठोस उत्तर है। हजारों धर्म ग्रन्थों का उपयोगी सार एक ही स्थान पर एकत्रित है। संस्कृत के सुललित श्लोकों के नीचे अन्वय सहित अर्थ दिये हुए हैं। नवीन युग की यह नवीन गीता हर धर्म प्रेमी के हाथ में होनी चाहिए। मू० ।=)

नोट—कमीशन के लिए लिखा पढ़ी करना बिलकुल व्यर्थ है। हाँ! छै से अधिक किताबें लेने वाले पर डाक खर्च माफ होगा।